बलिदान का महत्व

क़ायदे मिल्लत मौलाना सै0 कल्बे जवाद नक़वी साहब क़िब्ला

इन्सान जब कोई उद्देश्य पाना चाहता है तो उसको कोई बलिदान देना होता है। शिक्षार्थी अपने समय और क्षमताओं की बलि देता है तब परीक्षा में उत्तीर्ण होता है। व्यवसायी अपनी पूंजी और मेहनत की कुर्बानी देता है तब कामयाबी कदम चूमती है। एक मुलाज़िम और मज़दूर सवेरे से शाम तक कष्ट झेलता है तभी प्रतिकार का हकदार होता है। किसान ज़मीन जोतने, बोने में और माली बाग़ की देखभाल में चोटी का पसीना ऐड़ी तक बहाता है तब खेती लहलहाती है और बाग़ हरा रहता है। उद्देश्य जितना महान और निशाना जितना ऊंचा हो कुर्बानी भी वैसी ही देनी होती है।

''कुर्बानी'' अरबी शब्द है, यह ''कुर्ब'' से बना है जिसमें ''अलिफ'' और ''नून'' बढ़ा दिया गया है जैसे ''रहमान'' और ''इमरान'' आदि में है। कुर्बान में निस्बत की 'ये' बढ़ायी गयी तो ''कुर्बानी'' शब्द बना। कुर्बान का शाब्दिक अर्थ तो बस इतना है कि वह बातें जो किसी से भी समीपता और सान्निध्य का माध्यम हैं, कुर्ब का वसीला हैं। लेकिन इस्लाम के विधि शास्त्र में इसका परिभाषिक अर्थ यह है कि खुदा की बारगाह में जान एंव माल इस नीयत से पेश करना कि ईश्वर के दरबार में समीपता प्राप्त हो, ''कुर्बानी'' कहलाता है।

सबसे पहले कुर्बानी की चर्चा धार्मिक इतिहास में जनाब आदम (अ०) के बेटों जनाब ''हाबील'' और ''काबील'' के जिक्र में मिलती है। कुर्आन मजीद बताता हैः–

ऐ रसूल! तुम इन लोगों से आदम के दो बेटों (हाबील और काबील) का सच्चा क़िस्सा बयान कर दो कि जब इन दोनों ने खुदा की बारगाह में भेंट चढ़ाई तो उनमें से एक (हाबील) की भेंट स्वीकार कर ली गयी और दूसरे की भेंट नहीं स्वीकार हुई।

कहा जाता है यह प्रेम प्रसंग था। ''क़ाबील'' भी उसी लड़की से शादी करना चाहता था जिसकी सगाई और निस्बत जनाब ''हाबील'' से थी और इसी दुश्मनी में ''क़ाबील'' ने जनाब ''हाबील'' को क़त्ल कर दिया। किन्तु अहले–बैत (अ०) अर्थात हज़रत पैग़म्बर के निष्पाप परिजनों से अनुहार किया गया है कि हज़रत आदम ने जनाब हाबील के सद्गणों के कारण उनको अपना नायब और वसी चुना था और यही बात क़ाबील को नागवार थी।

खुली बात है कि जनाब ''हाबील'' का चयन अल्लाह के हुक्म की बिना पर हुआ था, चुनान्चे इलाही फैसला, ईश्वरीय निर्णय जानने के लिए दोनों ने भेंट चढ़ायी, कुर्बानी पेश की। जनाब ''हाबील'' के पास चरने वाले जानवर थे, आपने एक तन्दुरूस्त भेंड़ प्रस्तुत की और ''क़ाबील'' खेती करता था उसने गेहूं की बालियां रखीं। खुदा की बारगाह में भेंट स्वीकार हो जाने की पहचान यह कि आग उसे भस्म कर दे, चनान्चे जनाब ''हाबील'' की कुर्बानी आग के माध्यम से स्वीकार हो गयी और यही बात शत्रुता की जड़ बन गयी। कुर्आन मजीद से यह भी पता चलता है कि इसके बाद भी यह सिलसिला चलता रहा। यानी खुदा के क़रीबी बन्दे अपनी चहेती और प्रिय चीजें अल्लाह की बारगाह में पेश करते रहे और उन्हें आग जला कर उनके कुबूल हो जाने का उद्घोष करती रही। चुँनान्चे सूरा आले इमरान की 30 वीं आयत में यहूदियों के सवाल और उसके जवाब की चर्चा इस तरह की गई है।

''जो लोग यह कहते है कि अल्लाह ने ही यह बात पक्की कर ली है कि हम किसी पैग़म्बर पर ईमान न लायें जब तक कि वह ऐसी कुर्बानी पेश न करे जिसे आग जला दे''।

यह उन की मांग थी, जवाब में कुर्आन का इरशाद हैः–

''उनसे कहिये कि तुम्हारी तरफ से मुझसे पहले

बहुत से पैग़म्बर उज्जवल निशानियों के साथ आये और उसके साथ भी जो तुम ने कहा है(यानी बलि का आग से जलना) तो तुम ने क्यों उनको क़त्ल कर दिया, यदि तुम सच्चे हो ''अर्थात यह तो न मानने का कहना हुआ, वास्तव में तुम संमार्ग ग्रहण ही नहीं करना चाहते, क़ुर्आन मजीद का वाक्य और वह बात जो तुम ने कही (उसे भी पैग़म्बरों ने प्रस्तुत किया) इससे पता चलता है कि जनाब ''हाबील'' के पश्चात भी इस तरह क़ुर्बानी पेश होती रही

इस प्रकार के बलिदानों का उद्देश्य भी बहुत महान है। अल्लाह को मानने और स्वीकार करने का अर्थ ज़बान से ''ला इलाहा इल्ललाह'' अल्लाह के सिवा कोई ख़ुदा नहीं, कह देना भर नहीं है बल्कि पैदा करने वाले के और जितने भी वरदान है, सबके देने वाले सब सदगुणों की धनी जात (अस्तित्व) एक बन्दे की निगाह में सबसे प्यारी होना चाहिए। क़ुर्आन ने ईमान लाने वालों की महिमा यह बताई है– ईमान लाने वालों की नज़र में सबसे प्रिय ज़ात अल्लाह की होती है'' इसी अथाह प्रेम का प्रदर्शन अपनी प्रिय वस्तु प्रस्तुत करके किया जाता था। इस तरह के बलिदान का पूर्ण बिन्दु और पराकाष्ठा वह बलिदान था जो जनाब ''इब्राहीम'' (अ०) ने अपने सुपुत्र जनाब ''इस्माईल'' (अ०) का प्रस्तुत किया। उसका क़ुर्आन मजीद में विस्तृत वर्णन मौजूद है कि जनाब ''इब्राहीम'' (अ०) ने ताबड़तोड़ स्वप्न में देखा कि वह अपने बेटे को ज़िब्ह कर रहे हैं। जब बेटे से अपने सपने की चर्चा की तो कमसिन बेटा जब्ह हो जाने पर पूरी तरह तत्पर दिखा मगर अल्लाह ने जन्नत से फिदयः (मुक्ति प्रतिदान) भेज कर जनाब इस्माईल (अ०) को बचा लिया। यह श्रेष्ठतम बलिदान भाव अल्लाह को इतना पसन्द आया कि उसकी यादगार 10 जिलहिज्जा, बक़रईद के दिन पूरी दुनिया के मुसलमान जानवर ज़िब्ह करके शुक्राने (आभार प्रकाशन) की नमाज़ पढ़कर मनाते हैं। इतना ही नहीं यह इस्लाम की सबसे महत्वपूर्ण उपासना हज़ के संस्कारों में शामिल है। इस यादगार का उद्देश्य जाहिरी तौर पर यही समझ में आता है कि प्रत्येक मुसलमान कम से कम वर्ष भर में एक बार इब्राहीमी भावना का नवीनीकरण कर लें और यह याद कर लें कि हम इब्राहीमी पन्थ की एक इकाई हैं, इस्लाम का नाम भी सर्वप्रथम उन्हीं से चला है।

इब्राहीमी पन्थ की एक इकाई और अपने को मुसलमान कहने का तक़ाजा है कि अगर आवश्यकता पड़े तो औलाद सी प्यारी और चहीती चीज़ भी अल्लाह की प्रसन्नता के लिये न्योछावर कर देने को तत्पर रहें।

हज़रत पैग़म्बर ''मोहम्मद'' (स०) की पैग़म्बरी के उदघोष के बाद भी बलिदान की कल्पना बनी रही परन्तु भावना में कुछ और निखार आया और बलन्दी पैदा हुयी। वह ऐसे कि अब केवल अल्लाह की मुहब्बत की ही प्रदर्शन दृष्टिगत न रहा बल्कि उसकी सृष्टि का भला भी शामिल हो गया। अब जो क़ुर्बानी की जायेगी उसे बिजली गिर कर जलायेगी नहीं बल्कि हुक्म हुआ, ''क़ुर्बानी का गोश्त खुद खाओ और संकट ग्रस्त दीन दुखियों को भी खिलाओ।'' क़ुर्आन आगे बताता है, अरब के गंवारों में कुछ वह हैं जो अल्लाह और क़यामत के दिन पर ईमान रखते हैं और अल्लाह की राह में अपना सब कुछ व्यय करते हैं और उसे अल्लाह की बारगाह में समीपता और रसूल (स०) की दुआओं का माध्यम कहते हैं।

यह है क़ुर्बानी की इस्लामी कल्पना अर्थात अल्लाह की प्रसन्नता के लिए जानमाल को इस तरह लुटाना कि जिससे अल्लाह के प्रति प्रेम भी प्रकट हो और उसकी सृष्टि को लाभ भी मिले। क़ुर्बानी की सामान्य व्याख्या और इस्लामी परिभाषा में मौलिक भेद यही है कि सामान्य व्याख्या में किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य हेतु अपनी किसी प्रिय चीज को न्योछावर कर देना क़ुर्बानी कही जाती है, किन्तु इस्लामी परिभाषा में क़ुर्बानी के लिये ईश्वरीय प्रसन्नता की तलब बुनियादी शर्त है।

दुनिया में वही राष्ट्र और जातियां ज़िन्दा रहती हैं और सरबलन्द होती हैं जिनमें बलिदान भाव पाया जाता है, यहां बस उन्हीं को जीवित रहने का अधिकार है जो मरने के लिए तत्पर रहें। इतिहास साक्षी है कि जान बचाने वाले, स्वार्थी, आत्मपूजक, तबाह व बर्बाद हो जाते हैं। सब कुछ लुटा देने वाले और हर बलिदान पर तैयार रहने वाले इज़्जत आबरू से ज़िन्दा रहते हैं और सरबलन्द रहते हैं। इस्लाम का प्रारम्भिक विकास अनुकूल वातावरण में नहीं हुआ था। हज़रत पैग़म्बर (स०) ने जब तौहीद की दावत दी, एकेश्वरवाद का आह्वान किया तो परिस्थितियां सर्वथा प्रतिकूल थीं, हर तरह की बुराईयां अरबों में रची बसी हुई थीं।

अनैतिकता अपनी अन्तिम सीमांए छू रही थीं, जुआ, शराब, सूदखोरी व्यापक थी, रक्तपात का व्यापार गर्म था, दूसरे क़बीलों को लूट लेना और डाके डालना गौरव की बात समझी जाती थी। जाहिली (इस्लाम पूर्व) दौर का इतिहास जानने का एक मात्र सूत्र अरबों की कविता है जो उनकी सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक समझी जाती है। अरब के क़बीले जो पूर्वजों के प्रतीक पर गौरव के अभ्यस्त थे उन्होंने अपने कवियों की रचनायें हमेशा अपने मन मस्तिष्क में सुरक्षित रखी हैं। इन कविताओं के देखने से ज्ञात होता है कि वह बुराईयों को गौरव की बात, डाके, चोरी, मदिरापान, जुए और लूटमार को गौरव की बात समझते थे। बुराई को बुराई माना जाये तो उसका छुड़वा देना फिर भी सहज है परन्तु जब बुराईयां अच्छाईयों का रूप धारण कर मन मस्तिष्क पर अधिकार जमा लें और वातावरण बुराईयों के रंग में रंग जाये तो उसका सुधार विकट कार्य है। किसी समाज में कोई बुराई आम होकर रीति रिवाज का रूप धारण कर ले तो उसके सुधार में क्या–क्या कठिनाईयां होती हैं और किस किस तरह विरोध का सामना होता है और कैसी–कैसी तोहमतो और लांछनों का साबिक़ा पड़ता है किसी सुधार सेवा करने वाले से पूछिए, किसी सुधार का इरादा करने वाले से पुछिये, फिर वहां की बात क्या कही जाये जहां सभी कुछ बदलना हो। असत्य, विश्वास और बपंश का धर्म बदलवाना हो व्यक्तिगत दोष, समाजी बेढ़ंगेपन नैतिक ग्रन्थियां जो सैकड़ो वर्ष से घुट्टी में पड़ी हों सबको हटवा कर बिल्कुल उनकी विपरीत स्थिति को पनपना हो तो ज़रा सोचिए कि एक व्यक्ति चाहे कितनी ही दृढ़ प्रतिज्ञ और उच्च कोटि का साहसी हो, अमली क़दम उठाना तो दूर की चीज़ है इसका इरादा भी कर सकता है–?

यही कठिन समस्या हुजूर (स०) के सामने थी। इस महिमामयी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कितनी ऊंची और कितनी महिमामयी कुर्बानियों की ज़रूरत हो सकती है यह खुली हुयी बात है। इसलिए इस्लाम का इतिहास बलिदानों के इतिहास, कुर्बानियों की तारीख में बदल गया है। "सुहैब रूमी", "बिलाल हबशी", जनाब "अम्मार यासिर" जनाब यासिर और इस तरह के वो सज्जन जिनको किसी बलशाली क़बीले की पुश्तपनाह हासिल न थी अधिक दबाव में रहे। तीन साल तक घाटी में क़ैद रहना और पूरे नगर द्वारा असहयोग, बाईकाट, यह कोई मामूली मुसीबत है। उस वक़्त ऊंट और घोड़े के सिवा यात्रा के लिए कोई सवारी नहीं, मक्के से हबश तक नगर त्याग यात्रा, (हिजरत) करना, जन साधरण की हिम्मत का काम न था। अपना सब कुछ छोड़ कर मदीने की ओर (हिजरत) और उसके बाद की लगातार कुर्बानियों का फल मक्के की विजय के रूप में सामने आया जिसका वर्णन कुर्आन मजीद के सूरे अल–नस्र में इन शब्दों में हो रहा है।

"ऐ रसूल ! जब खुदा की मदद आ पहुंचेगी और फत्हे–ए–मक्का हो जायेगी और तुम लोगों को देखोगे कि लोग समूह–समूह खुदा के दीन में प्रवेश कर रहे हैं तो तुम अपने पालने वाले की प्रशंसा के साथ स्तुति करना और उसी से मुक्ति की प्रार्थना करना और बेशक वह बड़ा क्षमादानी है।"

इसलाम का दामन फैला, कुछ दीन को सत्य मान कर, कुछ इसलाम के मुकाबले सफल होने से निराश होकर, और कुछ हवा का रूख देखकर मुसलमान हो गये। अब हुजूर (स०) को इन्कार करने वालों से अधिक तथा कथित मुसलमानों के हाथों कष्ट और कठिनाई का सामना करना था। अभी वह लोग ग़ोल के ग़ोल इस्लाम में प्रविष्ट हुए थे, इस्लाम के यथार्थ को समझने भी न पाये थे, इस्लाम का ठीक अभिप्राय उनके मानस पटल पर जमा भी न था कि हुजूर (स०) के निधन की विपदा बिजली बन कर मुसलमानों पर गिरी। पैग़म्बर (स०) की वफ़ात से कपटाचारियों की हिम्मतें बढ़ गयीं, इस्लाम के प्रचार प्रसार से जिनके हित प्रभावित हुए थे, इस्लाम के टकराने के कारण जिनके वाली–वारिस और कलेजे के टुकड़े तलवार के घाट उतरते थे उन सब के बदले की भावना का निशाना हुजूर (स०) के अहले बैत (परिजन) बन गये। बनी उमैया का वह क़बीला जो इस्लाम के प्रचार प्रसार में सबसे बड़ी रूकावट था, इस्लाम की मुखालिफत में, विरोध में सबसे आगे–आगे सबसे पेश–पेश था और इस्लाम की कामयाबी के चलते अपनी महत्वता खो बैठा था और सत्ता शक्ति हाथ से निकल चुकी थी, उसको शाम सरीखे उर्वरा–प्राप्त हुकूमत का फरमान देकर दोबारा शक्ति पाने का अवसर दे दिया गया।

अब हुजूर (स०) के अहले–ए–बैत (अ०) थे और इस्लाम को बचाने के लिए कुर्बानियों का न टूटने वाला सिलसिला।

हज़रत अमीरूल मोमिनीन (अ०) की शहादत के बाद तो जैसे इस्लामी राज्य की समुची सत्ता ही बनी उमैया को हस्तांतरित हो गयी। लेकिन ग़नीमत था कि अभी इस्लाम के प्रत्यक्ष पक्ष का, जाहिरी रूप का कुछ न कुछ सम्मान किया जाता था और इस्लामी प्रतीकों को मस्लहत से ही सही परन्तु महत्वता दी जाती थी। लेकिन सन 60 हिज्री में जब इस्लामी सलतनत यज़ीद के हाथों में आयी तो फिर हर नक़ाब, प्रत्येक आवरण को तार–तार कर दिया और इस्लामी क्रान्ति के विरूद्ध प्रतिक्रान्ति की तैय्यारी शुरू कर दी, शायद अल्लामा ''इकबाल'' ने इन्हीं परिस्थियों का चित्रण अपने शेअर में किया होः–

किसे खबर थी लेकर चिराग़े मुस्तफवी
जहां में आग लगाती फिरेगी बू लहबी

वह सत्ता और वह शक्ति जो इस्लाम के नाम पर हथियाई गयी थी, वह इस्लाम की सूरत विकृत करने के लिये काम में लायी जाने लगी। प्रयत्न यह थे कि इस्लाम के पर्दे में ''जाहिली'' युग को पल्टा लाया जाये, ऊपरी भूषा इस्लाम की रहे काया और आत्मा इन्कार और कपटाचार की हो।

हुजूर (स०) ने जब ''तौहीद'' का पर्चम, एकेश्वरवाद की ध्वजा ऊंची की तो छिटकी हुयी ताक़तों से मुकाबला था, समूचा अरब संसार कबीलों में बंटा हुआ था। लेकिन ''लेकिन रसूल का नवासा'' जब इस्लाम बचाने के लिए उठा तो असंगठित कबीले नहीं एक संगठित राज्य था, जिसके खज़ाने सोने चांदी से लबालब थे, हजारों किलोमीटरों में सलतनत की सीमांए ईराक़, ईरान शाम, हिजाज, मिस्र, यमन को लपेटे हुये थी। सुसंगठित सेना थी, जिसने रोम और ईरान के महान सम्राज्य के पर्खचे उड़ा दिये थे। खुली हुयी बात है कि काम अत्यन्त कठिन और उद्‌देश्य अत्यन्त दुर्लभ था। वह सामान्य नियम अपनी जगह सर्वमान्य है कि उद्‌देश्य जितना ऊंचा होता है उसी अनुपात में जबर्दस्त कुर्बानियां दरकार होती हैं, इसीलिए इमाम हुसैन (अ०) ने इस्लाम के जीवन के लिए ऐसी कुर्बानियों का इंतिजाम फरमाया कि जो मानव सोचों से परे थी। जनाब आदम (अ०) से लेकर कर्बला की घटना तक जो व्यक्तिगत कुर्बानियां भी जो कभी इससे पहले सामने नहीं आयी थीं एक ही मैदान में पेशकर दीं, यहां तक कि कर्बला अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध और इस्लाम की सुरक्षा के लिए एक प्रतीक बन गयी इसी प्रतीक को उजागर करने के लिए मौलाना मो० अली ''जौहर'' ने लाजवाब शेअर कहा हैः–

कत्ले हुसैन अस्ल में मर्गे यज़ीद है
इस्लाम ज़िन्दा होता है हर कर्बला के बाद

शायद मतलब यह है कि यह कर्बला की ही किरणें हैं जो इस्लाम की सुरक्षा और दीन को शक्तिशाली बनाने के लिए बलिदान भाव उभारती रहती है। और इन्हीं माअनों में ईरान की इस्लामी क्रान्ति का स्वाभाव बन गया कि ''प्रत्येक दिन मुहर्रम की दसवीं और प्रत्येक भूमि कर्बला हैं'' अर्थात एक मुसलमान को नित्य चाहे वह किसी भू भाग में हो, हर जुल्म ओर जियादती से टकराने और इस्लाम के जीवन के लिये बड़े से बड़े बलिदान के लिये तत्पर रहना चाहिए क्योंकि

सतीज़ाकार रहा है अज़ल से ता इमरोज़
चिराग़े मुस्तफवी से शरारे बू लहबी

सन 60 की दसवीं मुहर्रम और कर्बला की धरती पर सत्य, असत्य का टकराव समाप्त नहीं हो गया, यह जंग आज भी जारी है और हर ईमान लाने वाले के दिल में आज भी कर्बला वालों की बलिदान भावना जीवित रहना चाहिए। यह कर्बला की घटना की अनवरत चर्चा ही का न्योछावर है कि ईरान और लेबनान में वह लोग चकित कारी कुर्बानियां दे रहे हैं जिन्हें सुनकर दुनिया दातों तले उंगली दबाये हुए है। वह शहादत को सआ़दत (मांगलिकता) और मौत को हयात–ए–जावेद, अमरता का माध्यम समझ कर, मुस्कराते–हंसते, बमों, और मीज़ाइलों को सीने से लगाते हैं, हंसी–खुशी टैंको के नीचे लेट जाते हैं लगभग पूरी दुनिया का एकजुट विरोध भी उनके सर को झुकने में असमर्थ है। यह वह लोग हैं जिनके ह्रदय ईश्वरीय प्रेम से जिन्दा हो गये हैं।